पाठ १८

वैदिक व्याकरण

भारतीय परम्परा संहितापाठ को मौलिक मानती है। 'संहिता' का अर्थ है सन्धि। पाणिनि ने कहा है—परः सन्निकर्षः संहिता—अर्थात् दो स्वरों या व्यञ्जनों का व्यवधानरहित सामीप्य संहिता कहलाता है। कुछ विद्वान् पद को मूल मानते हैं। निरुक्त के टीकाकार—दुर्गाचार्य निरुक्त के पदप्रकृतिः संहिता को आधार बनाकर इस विषय की चर्चा के दो पक्ष प्रस्तुत करते हैं। एक पक्ष के अनुसार पद मौलिक है, दूसरे पक्ष के अनुसार संहिता मौलिक है। प्राचीन भाष्यकार उव्वट पद को मौलिक मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी पद को मूलप्रकृति मानते हैं। अतः संहिता एवं पद के मूलप्रकृतित्व के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।

वैदिक स्वरसन्धि

वैदिक स्वरसन्धि कुछ भेदों को छोड़कर संस्कृत स्वर सन्धि के समान है। ऋक्प्रातिशाख्य के आधार पर इन सन्धियों के नाम केवल भिन्नता रखते हैं।

प्रश्लिष्ट सन्धि [सवर्ण दीर्घ]

(i) अ इ उ ऋ लृ लघु अथवा दीर्घ के बाद सस्थान स्वर आने पर दीर्घ सन्धि।

[पाणिनि—अकः सवर्णे दीर्घः]

उदाहरण—

इह+अस्ति=इहास्ति
स्रुचि+इव=स्रुचीव
सु+उक्तम्=सूक्तम्

(ii) अ या आ से परे इ, उ होने पर क्रमशः ए, ओ गुण सन्धि होती है।

[पा०—अदेङ् गुणः ; आद्गुणः]

उदाहरण—

इह+इह=इहेह
पिता+इव=पितेव
आ+उम=ओम

वैदिक व्याकरण में आ के पश्चात् ऋ होने पर ह्रस्व हो जाता है।

उदाहरण—

इन्द्रा+ऋभुभिः=इन्द्र ऋभुभिः
महा+ऋषिः=मह ऋषिः

कहीं-कहीं अ से परे ऋ होने पर अ को दीर्घ होता है।

उदाहरण—

[च+ऋक्=चा ऋक्]

आ के पश्चात् ऋ होने पर आ को अनुस्वार (आँ) हो जाता है।

उदाहरण—

विभ्वा+ऋभु=विभ्वाँ ऋभु

(iii) अ या आ से परे ए ऐ एवं ओ औ को वृद्धि सन्धि।

[पा०—वृद्धिरादैच्, वृद्धिरेचि]

उदाहरण—

आ+एभिः=ऐभिः
सोमस्य+औशिजः=सोमस्यौशिजः

कहीं-कहीं अ आ से परे ए या ओ होने पर अ आ के स्थान पर अनुस्वार (अँ आँ) हो जाता है।

उदाहरण—

अभिमन्त+एवैः=अभिमन्त

कभी कभी वृद्धि के स्थान पर गुण होता है।

उदाहरण—

उप+एतन=उपेतन

क्षैप्रसन्धि— [यण् सन्धि]

इ उ ऋ लृ लघु या दीर्घ के पश्चात् असवर्ण अच् होने पर यण् (य् व् र् ल्) हो जाते हैं।

[पा०—इको यणचि]

उदाहरण—

प्रति+आयम्=प्रत्यायम्
वि+उषाः=व्युषाः

अभिनिहित सन्धि [पूर्वरूप सन्धि]

(i) ए और ओ से परे अ होने पर अभिनिहित या पूर्वरूप सन्धि होती है।

[पा०—एङः पदान्तादति]

उदाहरण—

सूनवे+अग्ने=सूनवेऽग्ने

पाद के मध्य कहीं-कहीं पर पदादि के अ में प्रकृति भाव होता है।

उदाहरण—

देवासो+अप्तुरः=देवासो अप्तुरः
शिक्षन्तो+अव्रतम् शिक्षन्तो अव्रतम्

(ii) ए ऐ से परे स्वर होने पर ए ऐ का परिवर्तन अ आ में हो जाता है।

उदाहरण—

सर्तवै+आजौ=सर्तवा आजौ

उद्ग्राह सन्धि [अयादि सन्धि]

ए ओ और ऐ औ से परे अ से भिन्न स्वर होने पर क्रमशः अय् अव् आय् आव् होते हैं।

[पा०—एचोऽयवायावः]

उदाहरण--

इन्दो+इन्द्राय=इन्दविन्द्राय
उभौ+इन्द्राग्नी=उभाविन्द्राग्नी

लोपः शाकल्यस्य के अनुसार अय् अव् आय् आव् के य् व् का लोप होता है। पाणिनि ने **पूर्वत्रासिद्धम्** के माध्यम से य् व् के लोप को असिद्ध मानकर लोप के पश्चात् सन्धि का निषेध किया हैं।

उदाहरण—

तस्मै + इन्द्राय—(ऐ के स्थान पर आय्)
तस्म् + आय् + इन्द्राय (लोपः शाकल्यस्य के अनुसार य लोप)
तस्मा + इन्द्राय, सन्धि निषेध
तस्मा इन्द्राय

सन्धि का अभाव [Hiatus]—[प्लुत और प्रगृह्य]

[पा०—प्लुतप्रगृह्य अचि नित्यम्]

निम्नलिखित स्थलों में सन्धि नहीं होती—

1. तितउ, प्रउग आदि शब्दों में
2. समासयुक्त शब्द जैसे—गोओपशा, गोऋजीक, पुरएता, नमउक्ति।
3. पाद के अन्तर्गत—

(i) द्विवचनान्त ई, ऊ, ए के उपरान्त

[पा०—ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्]

उदाहरण—

रोहसी + उभे = रोहसी उभे

(ii) ओ, अस्मे, युष्मे, त्वे, अमी, और उँ पदों पर

उदाहरण—

अस्मे + आ = अस्मे आ
उँ + इति = उँ इति

(iii) निपात उ के पूर्व इ के आने पर 'इ' 'य' में परिणत हो जाती है अथवा सन्धि का अभाव होता है।

उदाहरण—

प्रति + उ + अर्दथि = प्रत्यु अर्दथि, प्रति उ अर्दथि

(iv) एक बार सन्धि हो जाने पर दूसरी बार सन्धि की स्थिति में।

उदाहरण—

तस्मै + इन्द्राय
तस्माय् + इन्द्राय—यलोप
तस्मा + इन्द्राय = तस्मा इन्द्राय

4. पादान्त में यदि यति (Pause) न हो तब—

अ अथवा आ + ए ओ के आने पर

उदाहरण—

उपस्था + एका = उपस्था एका

5. पदान्त की 'इ' में

उदाहरण—

ऊती + अनूती = ऊती अनूती

विसर्ग सन्धि

1. विसर्ग के बाद च् छ् आने पर विसर्ग को श् एवं ट् आने पर विसर्ग को ष् होता है ।

उदाहरण—

देवा: + चक्रम = देवाश् चक्रम
अग्नि: + टे (ते) = अग्निष्टे

2. अकारान्त पद अथवा 'वास्तो:' के विसर्ग के उपरान्त पति शब्द आने पर विसर्ग ष् में परिवर्तित होता है ।

उदाहरण—

वास्तो: + पति = वास्तोष्पति

3. 'इलाया:' या 'गा:' के बाद पद शब्द आने पर विसर्ग स में परिवर्तित होता है ।

उदाहरण—

इलाया: + पद = इलायास्पद

ऋक्प्रातिशाख्य में पूर्वोक्त विसर्ग सन्धि को उपाचरित कहा गया है ।

4. उषस् के साथ यदि 'बुध्' या 'वसु' उत्तरपद के रूप में हो तो 'उषस्' का विसग रेफ में परिवर्तित होता है ।

उदाहरण—

उषस् + बुध् = उषर्बुध्, उषर्भुत्
उषस् + वसु = उषर्वसु

5. विसर्ग के उपरान्त श् ष् स् आने पर विसर्ग अथवा श् ष् स् हो जाते हैं (विकल्प)

उदाहरण—

नि: + षिष्वरी = निष्षिष्वरी अथवा नि:षिष्वरी परवर्ती श् ष् स् से परे यदि अघोष स्पर्श आये तो विसर्ग लोप होता है ।

उदाहरण—

मन्दिभि: + स्तोमेभि: = मन्दिभि स्तोमेभि:

6. विसर्ग के उपरान्त क ख आने पर विसर्ग को जिह्वामूलीय और प फ आने पर उपध्मानीय होते हैं ।

उदाहरण —

विष्णो: + कर्माणि = विष्णो‿कर्माणि
इन्द्र: + पञ्च = इन्द्र‿पञ्च

7. पदान्तीय अ के उपरान्त विसर्ग से परे क् या प् हो तो विसर्ग स् में अन्यथा ष् में परिवर्तित होता है ।

उदाहरण—

दिव: + परि = दिवस्परि
द्यौ: + पिता = द्यौष्पिता

8. अ के पश्चात् आने वाले विसर्ग से परे अ होने पर विसर्ग के स्थान पर ओ होता है ।

उदाहरण—

य: + अस्मै = यो अस्मै

परन्तु अ से भिन्न स्वर आने पर विसर्ग लोप होता है ।

उदाहरण—

य: + इन्द्र य इन्द्र

9. आ के पश्चात् आने वाले विसर्ग के परे स्वर होने पर विसर्ग लोप होता है।

उदाहरण---

सुताः+इमे=सुता इमे

10. अ आ से भिन्न स्वर के उपरान्त विसर्ग से परे स्वर या घोष व्यञ्जन होने पर विसर्ग को 'र' हो जाता है।

उदाहरण—

ऋषिभिः+ईड्यः=ऋषिभिरीड्यः।

11. विसर्ग जिसकी उत्पत्ति 'र' से हुई है, के पश्चात् यदि 'र्' आये तो विसर्ग लोप एवं पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ होता है।

उदाहरण--

पुनः (पुनर्)+रूपाणि=पुना रूपाणि

[पा०—रोऽरि, ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः]

12. ऋग्वेद में 'सः' की प्रायः सन्धि होती है।

उदाहरण—

सः+औषधीः=सौषधीः।

स्यः के उपरान्त हल् आने पर स्यः के विसर्ग का लोप होता है।

उदाहरण— एष स्य भानुः

[पा०—स्यश्छन्दसि बहुलम्]

न् का मूर्धन्य ण्

1. ऋ, र्, ष् से परे न् का ण् होता है।

उदाहरण— पितृ+नाम्=पितृणाम्

पूर्+न=पूर्ण

[पा.—रषाभ्यां नो णः समानपदे]

2. स्वर, अन्तःस्थ, आ और नुम् के व्यवधान होने पर भी न् को ण् होता है।

उदाहरण— अर्केण गृभ्णाति।

[पा०—अटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि]

3. परि, प्र, परा, रक्षा, शिक्षा आदि शब्दों में निमित्त होने पर न को ण् होता है।

उदाहरण— परि+नः=परि णः

मो+सु+नः=मो षु णः

[पा०—नश्चधातुस्थोरुषुभ्यः, उपसर्गाद्बहुलम्]

4. प्र, परा, निर्, दुर्, परि उपसर्गों के निमित्त रहने पर न को ण।

उदाहरण— परि+नीयते=परिणीयते

[पा०—उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य]

5. पूर्वपद में निमित्त होने से और उत्तरपद में यान, वाहन, मनस्, नौ, घन, अयन और नवति पदों के रहने पर न् को ण् होता है।

उदाहरण— पितृ+यानम्=पितृयाणम्।

स् को षत्व

1. अ आ से भिन्न स्वर, रेफ या क के पश्चात् आने वाले स् का ष् हो जाता है।

उदाहरण— आग्नि+सु=आग्निषु

[पा०—इण्वोः आदेशप्रत्यययोः]

2. अभि, उ, ऊ, दि, नि, नु, नू एवं हि आदि के पश्चात् अस् के सकाराद्रिरूप अथवा सु, सः, स्वः, सीम्, स्म, स्विद् आदि के पदादि स् का ष् होता है।

उदाहरण— अभि+सु+नः= अभी षु णः।
भी+सधस्था=भी षधस्था

3. अनु, अभि, अति, प्रति, वि, नि, सु के निमित्त से स् का ष में परिवर्तन होता है।

उदाहरण— नि+सिञ्च=निषिञ्च

4. समास में पूर्वपद के अन्त में आने वाले इ ई, उ ऊ, ऋ,ए, ओ और र् के निमित्त से उत्तरपद के आदि स् का ष होता है।

उदाहरण— वेदि+सदे=वेदिषदे

अनुनासिक सन्धियाँ

1. पाद के अन्तर्गत और कभी-कभी पादान्त में 'आन्' के पश्चात् स्वर या अन्तःस्थ होने पर 'आन्' आँ में परिवर्तित होता है।

उदाहरण— जुजुर्वान्+यः=जुजुर्वाँ यः।

2. पाद के अन्तर्गत 'ईन्' 'ऊन्' के पश्चात् स्वर या य्, व्, ह् आने पर 'ईँ' 'ऊँ' हो जाता है।

उदाहरण— प्रधीन्+इव=प्रधीँरिव
पणीन्+हतम्=पणीहँतम् (ईँ के साथ विसर्ग अपवाद रूप में)

3. संस्कृत में न् के पश्चात् तालव्य, मूर्धन्य एवं दन्त्य अक्षर आने पर वे क्रमशः श्, ष्, स् के रूप में परिवर्त्तित हो जाते हैं। वैदिक संस्कृत में इस प्रकार के कतिपय उदाहरण मिलते हैं।

उदाहरण— आवदन्+त्वम्=आवदँस्त्वम्
नृन्+पात्रम्=नृँः पात्रम्।

सुबन्त सन्धि

वैदिक भाषा में संस्कृत की भाँति तीन लिंग, तीन वचन और आठ कारक विभक्तियाँ मिलती हैं।

वैदिक संस्कृत में तीन वचनों की पुष्ट करने वाले दो सूत्र हैं—

1. छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्—वेद में पुनर्वसू (द्विवचन) के स्थान पर एक वचन भी प्रयुक्त होता है। उदाहरण पुनर्वसु, पुनर्वसू।

विशाखयोश्च—विशाखा नक्षत्र के साथ भी वेद में एकवचन का प्रयोग होता है। उदाहरण —विशाखा, विशाखे।

अजन्त पुंल्लिग उदाहरण—प्रिय

	एक०	द्वि०	बहु०
प्रथम	प्रियः	प्रियौ, प्रिया	प्रियाः, प्रियासः
द्वितीय	प्रियम्	,, ,,	प्रियान्
तृतीय	प्रियेण, प्रिया	प्रियाभ्याम्	प्रियैः, प्रियेभिः

पाणिनि ने इन रूपों की व्याख्या के लिए अपने सूत्रों में कुछ विशेष प्रत्ययों का निर्देश किया है।

सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्याजाल:—सुपों के स्थान पर सु, सुलुक्, पूर्वसवर्ण, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, और आल् आदेश होते हैं।

आ, आल् और डा—आ एवं आल् में केवल शब्द भेद है। डा प्रत्यय में अंग की टि का लोप होता है।

या याच् ड्या—तीनों में 'या' शेष रहता है।

उदाहरण— प्रियौ, प्रिया—

प्रिय+औ—सुपां सुलुक्० से औ के स्थान पर आ—प्रिया

प्रियाः, प्रियासः—

प्रिय+जस् (अस्)—आज्जसेरसुक्—अर्थात् अदन्त शब्दों में असुक् का आगम।

प्रियासः

प्रियेण, प्रिया—

प्रिय+टा—पाणिनि 'इन्'—प्रियेण

प्रिय+टा—सुपां सुलुक्० आ आदेश

प्रिय+आ=प्रिया

प्रियैः, प्रियेभिः

प्रिय+भिस्—पाणिनि अतो भिस् ऐस्—प्रियैः

प्रिय+भिस्—बहुलं छन्दसि—प्रियेभिः

विकल्प के कारण प्रियैः एवं प्रियेभिः यह दो रूप।

इकारान्त शुचि

	पुंल्लिग	स्त्रीलिंग
तृ० एक वचन	शुचिना, शुच्या	शुच्या, शुची, शुचि
सप्त० एक वचन	शुचा, शुचौ	शुचा, शुचौ

तृ० एक वचन स्त्री० शुची, शुचि, शुच्चा—

शुचि+टा—सुपा सुलुक्०—पूर्वसवर्ण—

शुची।

शुचि+टा—सुपां सुलुक्० 'टा' का लोप—

शुचि।

शुचि+टा=शुचि+आ—यण् सन्धि—

शुच्या।

तृ० एक वचन पु० शुचिना, शुच्या—

शुचि+टा—पाणिनि—शेषोऽध्यसखि—घिसंज्ञा—
आङो नाऽस्त्रियाम्—ना का आगम

शुचि+ना=शुचिना। दूसरे पक्ष में—

शुचि+आ=शुच्या।

स० एक वचन — शुचा, शुचौ—शुचि+ङि—सुपां सुलुक्०ङि के स्थान में डा शुचि+डा (आ) टि लाप
शुच्+आ=शुचा

उकारान्त मधु

प्र० बहु०	मधवः, मध्वः
द्वि० ,,	मध्वः, मधूः—मधु+शस्—सुपां सुलुक्० पूर्वरूपेआदेश—मधूः ।
तृ० एक०	मधुना, मध्वा
च० ,,	मधवे, मध्वे
पं० ,,	मधोः मध्वः } पाणिनि—ङसिङसोश्च—पूर्वरूपेकादेश
ष० ,,	मधोः मध्वः
स० ,,	मधौ, मधवि

शेष लौकिक वत्

पूर्वोक्त शब्द रूपों में एक पक्ष में क्षैप्र सन्धि एवं दूसरे पक्ष में गुण है। यहाँ घेर्ङिति (घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः)—ङित् सुप् (ङे, ङसि, ङस् ङि) परे रहते घि [शेषोऽघ्यसखि—अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ यौ इदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात्] संज्ञक अंग को गुण होता है।

सखि शब्द—सखि शब्द के सशक्त अंग (सु, औ, जस्, अम्, औट्) में वृद्धि हो जाती है और रूप बनते हैं—सखा, सखायौ, सखायः ।

प्रथमा द्वि०वचन—सखाया, सखायौ—सख्युरसम्बुद्धौ—णित्संज्ञा
अचोञ्णिति—वृद्धि—
सखायौ रूप बना ।
सखाय्+औ—सुपां सुलुक्० से औ के स्थान में आ—सखाय्+आ=सखाया ।

ऋकारान्त-पितृ

प्रथमा द्वि० }
द्वितीया द्वि० } पितरा, पितरौ

ओकारान्त गो

प्रथमा द्वि० }
द्वितीया द्वि० } गावा, गावौ

षष्ठी बहु. गवाम्, गोनाम्

आकारान्त स्त्रीलिंग—प्रिया

प्रथमा बहु० प्रियाः, प्रियासः

तृतीया एक प्रिया, प्रियया—प्रिय+आ—सुपां सुलुक्० पूर्वसवर्ण—प्रिया ।

इयङ् उवङ् स्थान तथा यण्

पाणिनि ने छन्दस्युभयथा कहकर भू और सुधी शब्दों में इयङ्, उवङ् एवं यण् के विकल्प का निर्देश किया है ।

उदाहरण— [1]विभू+अम्—यण्—विभ्वम्
विभू+अम्—उवङ्—विभुवम्
सुधी+औ—यण्—सुध्यौ
सुधी+औ—इयङ्—सुधियौ

इदम् पुंल्लिंग

प्रथमा द्वि०
द्वितीया द्वि० } इमा, इमौ—सुपां सुलुक्० 'इमा' में आ आदेश

तृतीया एक० अनेन, एना, बहु०—एभिः

चतुर्थी ,, अस्मै, इमस्मै

पञ्चमी ,, अस्मात्, आत्

षष्ठी ,, अस्य, इमस्य

सप्तमी ,, अस्मिन्, अयोः

कतिपय विशेष रूप

1. अप् के अकार का प्रथमा द्वितीय वचन एवं बहु वचन में दीर्घ होता है।
   उदाहरण—आपः, अद्भिः, अद्भ्यः

   [पा० अप्तृन्तृच्०] पूर्व प् का द्

2. दिव् के तीन अंगों में—द्यो, दिव, एवं द्यु में रूप उपलब्ध होते हैं।
3. दृगन्त, स्ववस, स्वतवस् इनके पश्चात् सु रहने पर नुम् का आगम।
   उदाहरण—ईदृङ्, स्ववान्
4. मास् शब्द के मकारादि विभक्तियों के रहने पर स् का द् में परिवर्तन।
   उदाहरण—माद्भिः, माद्भ्यः।
5. मत् और वत् प्रातिपदिकान्तों के सम्बोधन एक वचन में अन्तिम त् का रु (:) होता है।
   उदाहरण—भानुमत् से भानुमः
   मरुत्वतं=मरुत्वः
6. वेद में ष पूर्व में है जिसके ऐसे नकारान्त शब्दों की अच् उपधा का विकल्प से दीर्घ होता है।
   उदाहरण—ऋभुक्षन् से ऋभुक्षाणम् एवं ऋभुक्षणम्
   (द्वितीया एक वचन)

तिङन्त रूप

विकरणों एवं अंगों की दृष्टि से वैदिक संस्कृत में इतनी नियमितता नहीं है जैसी लौकिक संस्कृत में है। गण, विकरण, आगम और प्रत्ययों की दृष्टि से वैदिक संस्कृत अधिक समृद्ध है।

पाश्चात्य विद्वान दस लकारों का विभाजन कालवाची (Tense) और भाववाची (Moods) के अर्थ को दृष्टि में रखकर करते हैं। यह लोग लट् (Present) लङ् (Imperfect) लिट् (Perfect) लुङ् (Aorist) लृट तथा लट् (Future) को कालवाची मानते हैं और शेष पांच को भाववाची मानते हैं। ये हैं—द्योतक (Indicative) लेट् (subjunctive) आज्ञादि का अभिव्यञ्जक विधिमूलक भाव (Injunctive) लिङ् (optative) और लोट् (Imperative)। पाश्चात्यों के अनुसार यह भाववाची प्रत्यय लट्, लिट् और लुङ् के अंगों के साथ जुड़ते हैं। अर्थात् विभिन्न प्रकार के भाववाची तिङन्तों और विशेष प्रत्ययों को विशेष कालवाची अंगों से जोड़कर रूप निष्पन्न होते हैं।

पाणिनि के अनुसार इस प्रकार के विशेष अंग नहीं हैं, परन्तु धातु के साथ विशेष प्रत्यय जुड़ा हुआ है।

उदाहरण— भवति।

पाणिनि—भू+शप्+तिप्

पाश्चात्य—भव्+अति—भव् को लट् अंग माना गया है।

'अ' विशेष प्रत्यय है। 'ति' तिङन्त है।

गण विवेचन

पाणिनि ने विकरणों की कल्पना करके धातुओं का वर्गीकरण दस गणों में किया है। वे हैं-- भ्वादि अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि। पाश्चात्य विद्वान् गणों के आठ विभाग मानते हैं, जिनमें से दो भाग मुख्य हैं—

(1) वे धात्वंग जिनके अन्त में अ आता है और कोई अन्य परिवर्तन नहीं होता। वे हैं—

(i) भ्वादि। उदाहरण—जय्+अ+ति=जयति [पाणिनि-शप्]

(ii) तुदादि। उदाहरण—तुद्+अ+ति=तुदति [पाणिनि 'श' विकरण]

(iii) दिवादि। उदाहरण—दिव्+य=दीव्य+ति=दीव्यति

(2) वे धात्वंग जिनमें अंग और प्रत्यय में स्वरपरिवर्त्तन (Vowel gradation) होता है। इस वर्ग में वे शेष भाग आते हैं जिनमें 'नो' अथवा 'ना' विकरण जुड़ते हैं। इनके सशक्त या अशक्त अंग का परिवर्तन हो जाता है।

(iv) अदादि—धातु+विकरण

पाणिनि—शप् तत्पश्चात् उसका लोप

अद्+ति=अत्ति

(v) जुहोत्यादि—इस गुण में प्रत्यय द्वित्वात्मक धातु के साथ जुड़ते हैं और अंग में गुण की सम्भावना होती है।

उदाहरण—√हु से हु हु=जुहु=जुहो+ति=जुहोति

(vi) रुधादि—इस गण में अन्त्याक्षर से पूर्व 'न' जुड़ता है। पाणिनि 'श्नम्'।

उदाहरण—रुध्+ति=रुन्ध्+ति=रुणद्धि

(vii) स्वादि इस गण में नु अथवा गुणयुक्त नो विकरण।

पाणिनि—'श्नु' विकरण।

उदाहरण—सु+नु+ति=सुनोति

(viii) क्र्यादि—में 'ना' विकरण।

पाणिनि—'श्ना' विकरण।

उदाहरण—गृभ्+ना+ति=गृभ्णाति

(ix) तनादि और चुरादिगण—पाणिनि इन दो गणों को पृथक्-पृथक् मानते हैं। दोनों के लिए क्रमशः 'उ' और णिच् विकरणों का विधान करते हैं। पाश्चात्य विद्वान् प्रायः तनादिगण को स्वादि का ही भाग मानते हैं।

गण व्यत्यय

वैदिक संस्कृत में एक धातु अनेक गणों में प्रयुक्त होता था। इस कारण वैदिक भाषा अधिक समृद्ध थी। पाणिनि के कतिपय सूत्र वैदिक संस्कृत की इस विशेषता की ओर संकेत करते हैं—

1. छन्दसि लुङ्लङ्लृटः—तीनों लकारों के प्रयोग में पारस्परिक विनिमयात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है।

2. बहुलं छन्दसि—इसका पूर्ववर्ती सूत्र है—आदिप्रभृतिभ्यः शप् अर्थात् अदादिगण के धातुओं में विकल्प से वेद में शप् का लोप।

   उदाहरण—वृत्रं हनति (हन्ति के स्थान पर)

   अहिः शयते (शेते)

पूर्वोक्त सूत्र में अनुवृत्ति जुहोत्यादिभ्यः श्लुः से आती है। अर्थ—जुहोत्यादिगण के धातुओं में 'श्लु' विकरण विकल्प से हो।

उदाहरण—दाति (दधाति के स्थान पर) जहाँ 'श्लु' न होगा वहाँ द्वित्व भी न होगा। जो धातु जुहोत्यादि-गण का नहीं है, उनमें 'श्लु' हो कर द्वित्व होगा। उदाहरण—

विवष्टि (वष्टि के स्थान पर)

वित्रक्ति (वक्ति के स्थान पर)

3. व्यत्ययो बहुलम्—अनेक स्थलों पर इस सूत्र से भी गणव्यत्यय होता है।

प्रत्यय

पाणिनि लकार के 'ल' के स्थान पर तिप् तस् झि आदि प्रत्यय मानते हैं। अतएव लकारों और अंगों के अनु-सार उनका परिवर्तन यथास्थान करते हैं। पाश्चात्य विद्वान् प्रत्ययों की दृष्टि से अंगों का दो भागों में विभाजन करते हैं।

(i) लिट् अंग

(ii) लिट् अंगों से भिन्न

मुख्यतः चार भाववाची तिङन्त इस प्रकार हैं—

लोट् (Imperative)

लोट् केवल आज्ञार्थक ही नहीं है वरन् इसके साथ इच्छा, अनुरोध, शिक्षा आदि का अर्थ भी जुड़ा रहता है। उदाहरण—देवाँ इह आ वह (प्रार्थना)

अहेकमानो बोधि (इच्छा)

छिधि (आज्ञा)

1. पाणिनि 'सि' के स्थान पर 'हि' आदेश करते हैं और इसे अपित् मानते हैं [सेर्ह्यपिच्च] परन्तु वा छन्दसि से वेद में 'टि' को विकल्प से अपित् मानते हैं। अपित् पक्ष में ङिद्वत् होकर अंगों में गुणवृद्धि का निषेध हुआ। दूसरे पक्ष में गुण का विधान होता है।
   उदाहरण—गृभ्णाहि, गृभ्णीहि (अपित्)

2. श्रु, ऋणु, पृ, कृ, वृ इन धातुओं में हि के स्थान पर 'धि' आदेश और वह विकल्प से—वा छन्दसि से अङित् होगा।
   उदाहरण—युयोधि (पित्) युयुधि (अपित् एवं ङिद्वत्)
   इसी प्रकार श्रुधि, ऋणुधि, पृधि, कृधि, अपावृधि
   (पा०—श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि)

3. हलन्त धातुओं से परे 'श्ना' विकरण होने पर एवं उससे परे 'हि' होने पर 'श्ना' के स्थान पर 'शानच्' हुआ और अतो हेः से टि का लोप हुआ।
   उदाहरण—गृहाण—गृह्+श्ना+हि=
   गृह्+शानच् हि लोप=गृहाण।

4. 'हि' के स्थान पर 'आय्' (शायच्) प्रत्यय भी होता है।
   (छन्दसि शायजपि)
   उदाहरण—गृभाय—गृभ्+श्ना+हि=गृभ्+शायच्=गृभाय।
5. 'हि' के स्थान पर 'तात्' प्रत्यय।
   उदाहरण—कृणुतात्, वित्तात्
   (पा० तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्)
6. लोट् के मध्यम पु. बहुवचन में त के स्थान पर वेद में त, तनप्, तन और थन प्रत्यय होते हैं। तनप् और तन में केवल अंग भेद है। तन प्रत्यय के साथ अंग में गुण नहीं होता।
   (पा० —तप्तनप्तनथनाश्च)
   उदाहरण—त = जुहोत
   तनप्=जुहोतन (हु+तनप्)
   तन=इतन √इ+तन—गुण का अभाव
   थन = यजिष्ठन
7. त के स्थान पर तात् प्रत्यय
   (पा०—तस्य तात्)
   उदाहरण—कृणुतात्, पुनीतात्।

विधिमूलक भाव (Injunctive Mood)

यह भाव प्रायः लेट् लोट और विधि लिङ् के भावों का अभिव्यञ्जक है। इसलिए इनको अर्थ की दृष्टि से इन भावों से पृथक् करना कठिन है।

(i) यह भाव वक्ता की इच्छा की अभिव्यक्ति करता है।
   उदाहरण—विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम् (इच्छा)
   अद्या नो देव सावीः (प्रार्थना)

(ii) प्रश्नात्मक वाक्यों में इस भाव का प्रयोग।
   उदाहरण—को नो मह्या अदितये पुनर्दात्

(iii) नकारात्मक अर्थ में प्रयोग।
   उदाहरण—यं आदित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेम अघं नयत।
   नकारात्मक अभिप्राय से 'मा' के प्रयोग के साथ—

उदाहरण—मा न इन्द्र परा वृणक्।

लौकिक संस्कृत में लुङ् लङ् लृङ् में आने वाले अट् और आट् का निषेध केवल 'मा' के योग में होता है। (पा०—न माङ्योगे) परन्तु वैदिक संस्कृत में 'मा' के विना अट् और आट् का लोप पाणिनि ने माना है। (पा०—बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि) इस नियम से सिद्ध होने वाले सब रूप लुङ् और लङ् के हैं।

विधिमूलक भाव और लेट्

वेद में विधिमूलक भाव और लेट् लकार को रूप और अर्थ की दृष्टि से पृथक् करना कठिन है। विधिमूलक भाव प्रायः उन्हीं अर्थो को अभिव्यक्त करते हैं, जिन्हें लेट् और लोट् लकार कहते हैं।

उदाहरण—गमत्—यह 'अगमत्' का विकृत रूप (अट्हीन) गमत् भी हो सकता है और लेट् का अट्युक्त रूप भी—उदाहरण—

गम्+अट्+ति=त्=गमत्

स्तोषाम्—'अस्तोषाम्' का अट्हीन रूप भी हो सकता है और स्तु+सिप्+आट्+मि+म्=स्तोषाम् रूप भी।

लेट् (Subjunctive Mood)

लेट् का प्रयोग लिङ् के अर्थ में होता है (लिङर्थे लेट्) इस लकार का मुख्यार्थ है "इच्छा की अभिव्यक्ति" लेट् में क्रियमाण कार्य की निष्पन्नता वक्ता के अधीन होती है। लिङ् कामना तक सीमित रहता है, क्रिया तक नहीं पहुँचता। निम्नलिखित अर्थ लेट् लकार में सभिहित होते हैं—

(i) वक्ता की इच्छाभिव्यक्ति लेट् में होती है और इसके साथ 'नु' 'हन्त' आदि का प्रायः प्रयोग होता है।

उदाहरण—प्र नु वोचा सुतेषु वाम्

(ii) अन्य के लिए प्रेरणात्मक इच्छा भी इसी भाव का क्षेत्र है।

उदाहरण—हनो वृत्रं जया आपः।

एवम्—स उ श्रवत्

पाणिनि ने उपसंवाद और आशंका में लेट् का प्रयोग बताया है—(उपसंवादाशंकयोश्च)

उदाहरण—अहमेव पशूनामीशे (उपसंवाद)

नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम (आशंका)

प्रेरणा, प्रार्थना, परामर्श, प्रश्नात्मक इच्छा आदि भी लेट् के मुख्य विषय हैं। कभी-कभी इन अर्थों में लोट् का प्रयोग भी होता है।

[पा०—लोट् च]

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार सशक्ताङ्ग के साथ लेट् के प्रत्ययों से पूर्व इसका विशेष आगम 'अ' जोड़ा जाता है। पाणिनि इसके विशेष आगम के लिए दो सूत्र देते हैं—

1. लेटो ऽडाटौ—लेट् लकार में अट् और आट् का आगम होता है।

उदाहरण भव्+अट्+त्=भवत्

भव्+आट्+ति=भवाति

पित् होने के कारण इसके अंग में गुण हो सकता है पा०—सार्वधातुकमपित्

2. सिब्बहुलं लेटि—लेट् लकार में विकल्प से सिप् का आगम।

उदाहरण मन्दिवत्=मन्द्+इ+सिप् (स)+त्=मन्दिषत्।

वार्तिक—सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः—से सित् विकल्प से णित् होने के कारण अंग की वृद्धि हो सकती है।

उदाहरण तॄ+इ+सिन् (णित्)=त्=तार+इस+त्=तारिणत।

प्रत्ययों के संदर्भ में पाणिनि ने कतिपय सूत्र दिए हैं—

(1) आत ऐ प्रथम पु० और मध्यम पु० आत्मनेपद द्विवचन में 'आ' को 'ऐ' आदेश।

उदाहरण मन्त्रयैते, मन्त्रयैथे।

(2) वैतोऽन्यत्र—लेट् लकार में ए के स्थान पर विकल्प से ऐ आदेश।

उदाहरण— ईशे, ईशै।

(3) इतश्च लोपः परस्मैपदेषु—परस्मैपद में लेट् 'इ' का लोप।

उदाहरण — जोषिषत्, तारिषत्। कहीं-कहीं पर यह लोप नहीं होता।

भवाति, भवासि।

(4) स उत्तमस्य—लेट् लकार में उत्तम पुरुष के स् का लोप।

उदाहरण—भवाव, भवाम।

लिङ् Optative या Potential

पाणिनि ने लिङ् का प्रयोग विधि, निमंत्रण, आमन्त्रण अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थना अर्थों में बताया है।

पा०—विधि निमंत्रणा मन्त्रणाधीष्ट सम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिङ्

उदाहरण— विधेम ते स्तोमैः

सम्भावना के अर्थ में—

मीढ्वां अस्माकं बभूयात्।

लङ् लकार

"यदि ऐसा हुआ तो ऐसा होता" इस प्रकार की परवर्त्ती भविष्यत् क्रिया का निमित्त यदि क्रिया में हो तो वह लृङ् कहलाता है। पाणिनि [लिङ्निमित्ते लङ्क्रियातिपत्तौ] इसका विशेष प्रत्यय 'स्य' भविष्यत्काल के समान होता है। पा०—स्यतासी लृलुटोः। इसमें आदि में अट् का आगम भूतकाल के समान होता है। उदा० अमरिष्यत्।

कालवाची तिङन्त

वर्त्तमान—लट्

लट् का प्रयोग ऋग्वेद में भूतकाल के अर्थ में भी होता है। उदा०—अमुया शयानं अति यन्ति आपः।

पूर्वोक्त में भूत के अर्थ में लट् का प्रयोग हुआ है।

'पुरा' के साथ भूतकाल के अर्थ में वर्त्तमान का प्रयोग होता है।

उदाहरण— सचावहै यद् वृकं पुराचित्। [जिसे हम अहिंसापूर्वक सेवन करते 'हैं' थे के अर्थ में]

'स्म पुरा' के साथ वर्त्तमान का प्रयोग भूतकाल का वाचक होता है।

उदाहरण— सं होत्र स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।

(पा०-लट् स्मे अपरोक्षे च)

कहीं-कहीं लट् भविष्य या लेट् की भी अभिव्यक्ति करता है—

उदाहरण— अहमपि हन्मि इति होवाच।

भूतकाल—लङ् लकार

पाणिनि वेद में सब कालों में लुङ् लङ् और लिट् के प्रत्यय मानते हैं—छन्दसि लुङ् लङ् लिट्।

लङ् लकार अर्थ की दृष्टि से शुद्ध भूतकाल का वाचक है।

उदाहरण— अहन् अहिम्।

पाठ १६

लुङ् लकार

वैदिक संस्कृत में लुङ् का विस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण प्रयोग मिलता है । लुङ् प्रायः भूत में घटित और वर्तमान में कही जाने वाली घटना का अभिव्यंजक है । इसके द्वारा अनद्यतन भूत की अभिव्यक्ति होती है । उदाहरण—

प्रति दिवो अदर्शि दुहिता ।

लुङ् का विभाजन दो प्रकार किया जा सकता है ।—

(i) स् आगमयुक्त लुङ्—पा०—सिच्

(ii) अ आगम युक्त लुङ्

1. स लुङ् [पा०—क्स]

(अ) द्योतकभाव—उदाहरण—अवृक्षम्— अ + √वृच् + स— (क्स) + म् ।

(पा० शल इगुपधादनिटः क्सः)

2. स् लुङ् [पा०—सिच्]

पाणिनि इस लुङ् में च्लि (सामान्य प्रत्यय) के स्थान पर सिच् का विधान करते हैं । उदा०—

द्योतक भाव—अनैक्षीत्—अ + निज् = नैक + स् + ई + त् ।

पाणिनि इसमें ईट् का आगम करते हैं ।

(आ) लेट्भाव—स्तोषाणि—स्तु = स्तो + स् + आ = नि = स्तोषाणि । इसमें विशिष्ट आ का आगम लेट् का और अङ्ग (स् युक्त) लुङ् का वाचक है । पाश्चात्य विद्वान् इसमें स्तो + स् (लुङ्) + आ (लेट्) + नि मानते हैं । परन्तु पाणिनि इसमें शुद्ध लेट् रूप इस प्रकार मानते हैं—

स्तु = स्तो + सिप् (लेट्) + आट् (लेट्) + नि = स्तोषाणि ।

(इ) विधिमूलक भाव - उदाहरण

स्तोषम्—स्तु = स्तो + स् + अम् ।

पाश्चात्य विद्वान् 'स्तोषम्' को लुङ् लकार का विधिमूलक भाव (Injunctive Mood) मानते हैं । पाणिनि इसे लुङ् का रूप मानकर आदि अट् का लोप करते हैं ।

(ई) लिङ्—भक्षीय

पाश्चात्य विद्वान्— भज् + स् (लुङ्) = भज् + स् + ईय् = भक्षीय ।

लिङ् के विशेष प्रत्यय लुङ् के अङ्ग में विद्यमान रहने के कारण यह लुङ् के लिङ् भाव कहे जाते हैं । उदाहरण—मंसिष्ठाः (मुक्षीय) ।

(उ) लोट् - उदाहरण—नेष - नी = ने + स् + अ = नेष

3. इष् लुङ् [पा० — इट् + सिच् = इष]

(i) द्योतक—उदाहरण अक्रमिषम—अ + क्रम् + इट् + सिच् + अम् ।

(ii) लेट्—उदाहरण विविषाणि—विद् + इस् + आ + नि = विविषाणि ।

पा० — विद् + इट् + सिप् + आट् + नि = विविषाणि ।

(iii) विधिमूलक—उदाहरण शंसिषम्—शंस्+इल्+अम्। एवं तारीः, योधीः।

(iv) लिङ्—उदाहरण—एधिषीय—एध्+इष्+ईय।

(v) लोट्—उदाहरण अविष्टम्, अक्रमीय्।

अ+क्रम्+इष्+ई+म्। पाणिनि—अ+क्रम्+इट्+सिच्+ईट+म

[पा०—इट ईटि—सिच-लोप]

4. सिष् लुङ् [पा०—सक्+इट्+सिच्=सिष्]

(i) द्योतक उदाहरण—अयासिषम्—अ+या+सिष्+अम्।

पा० - अ+या+सक्+इट्+सिच्+अम्।

(ii) लेट्—उदाहरण—यासिषत्।

(iii) लिङ् उदाहरण—यासिषीष्ठाः।

(iV) विधिमूलक उदाहरण—रेसिषम्

(v) लोट्—उदाहरण—यासिष्टम्।

धातु लुङ् (Root Aorist)

इस लुङ् में धातु के पश्चात् प्रत्यय लगता है। पाणिनि इस लुङ् में च्लि के स्थान पर सिच् कर के सिच् लोप मानते हैं। उदाहरण—अस्थात्—अ+स्था+त्

पा०—अ+स्था+सिच्+त्—सिच् लोप—अस्थात्।

(i) द्योतक—उदाहरण—अस्थात्, अस्थाम्।

(ii) लेट्—उदाहरण—करा, करोषि।

(iii) विधिमूलक—उदाहरण—करम् वर्धम्।

(Iv) लिङ्—उदाहरण—देयाम्, गम्याः।

(v) लोट्—उदाहरण—कृधि, गतं, दातम्।

द्वित्वांग लुङ् (Reduplicated Aorist)

पाणिनि इस लुङ् में चङ् मानते हैं और चङि सूत्र से इसके अंग का द्वित्व करते हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी अंग के आधार पर इसको द्वित्वांग लुङ् कहते हैं।

(अ) द्योतक—उदाहरण अजीजनम् (√जन्)

पाश्चात्य०—अ+जीजन्+अ+म्

पाणिनि—अ+√जन्+चङ् (अ)+म् चङि—से द्वित्व

(आ) लेट्—उदाहरण—तीतपासि, पस्पृशाति।

(इ) विधिमूलक—उदाहरण—दीधरम्

(ई) लिङ्—उदाहरण—बोचेयम्, रीरिषेः।

(उ) लोट्—उदाहरण—बोधतात्—जिगृतम्।

अङ् लुङ्—लुङ् का यह भेद लङ् लकार से मिलता है। इसमें प्रत्यय असहित और अरहित मिलते हैं। पाणिनि च्लि के स्थान पर अङ् का विधान करते हैं।

(अ) द्योतक—उदाहरण—अविदम्—अ+विद्+अ+म्

(आ) लेट्—उदाहरण—विदासि, विदाः।

(इ) विधिमूलक—उदाहरण—विदम्, विदः।

(ई) लिङ्—उदाहरण—विदेयम्, विदेः।

(उ) लोट्—उदाहरण—सद, सदतम्।

कर्मवाच्य लुङ्

कतिपय लुङ् लकार के अन्त में 'इ' प्रत्यय (चिण्) का प्रयोग होता है। प्रायः यह कर्मवाच्य का वाचक होता है। इसलिए पाश्चात्य विद्वान् इसे कर्मवाच्य लुङ् (Passive Aorist) कहते हैं।

उदाहरण—अकारि, अबोधि।

पाणिनि इसमें चिण् विकरण ला कर 'त' प्रत्यय परे होते हुए प्रत्यय का लोप करते हैं। (चिणो लुक्)

लिट् लकार

(1) लिट् का अर्थ वेद में पूर्ववर्त्ती क्रिया पर निर्भर होता है। 'पुरा' और 'नूनम्' के साथ इसका अर्थ क्रमशः भूत और वर्तमान का होता है। उदाहरण—

शश्वद्धि व ऊतिभिर्वयं पुरा नूनं बुभुज्महे (हम पूर्व भी अपनी रक्षा का सेवन करते थे और अब भी करते हैं)।

(2) लिट् का अर्थ वर्तमान जैसा भी होता है। उदाहरण—कश्चिकेत (कौन जानता है)।

(3) अनद्यतन के अर्थ में लिट् का प्रयोग होता है। उदाहरण—

पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु (कण्व के पुत्र ने तुम्हारे लिए मधु का सेवन किया है)।

(4) परोक्ष के अर्थ में लिट् का प्रयोग। उदाहरण—

इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये।

(5) लिट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग। उदाहरण—

अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्

पाणिनि सब कालों में वेद में लुङ् लङ् और लिट् मानते हैं। छन्दसि लुङ् लङ् लिटः।

विशेष प्रत्यय

(i) 'इरे' प्रत्यय के स्थान पर वेद में 'रे' प्रत्यय भी होता है। उदाहरण—

दध्रे, नुनुद्रे।

(ii) √सृ के प्रथम पुरुष एकवचन में अभ्यास के 'अ' और वुक् के आगम का निपात हो जाता है। (पा०—ससूवेति निगमे)

विशेष अंग

(i) तन् और पत् धातुओं की उपधा का अजादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय के परे होने पर लोप होता है। उदाहरण—वितत्निरे, पप्तिम।

(ii) कुछ अङ्गों के अभ्यास को दीर्घ होता है। उदाहरण—दाधार, दीधाय।

(iii) वार्त्तिककार कात्यायन द्वित्व के विषय में वेद में विकल्प मानते हैं।

उदाहरण—जागार, दाति।

लिट् के भाव

(i) लेट्—उदाहरण—ततनः

पाणिनि—त+√तन्+अ (अट्)+सिप>स्>:=ततनः

जुजोषसि—जु+√जुष्+अट्+सिप्

यहां अङ्ग की दृष्टि से ये रूप लिट् वर्ग के हैं परन्तु अर्थ की दृष्टि से लेट् के।

(ii) विधिमूलक—उदाहरण—शशासः

(iii) लिङ्—उदाहरण—जगम्याम्

ज+√गम्+या (यामुट्)+म्

पूर्वोक्त उदाहरण में लिङ् का विशेष प्रत्यय 'या' जुड़ा है।

इसी प्रकार—बभूयाः।

(iv) लोट्—उदाहरण मुमुग्धि, शशाधि।

अद्युक्त लिट् (Pluperfect)

अर्थ की दृष्टि से यह लङ् के समान है। उदाहरण—सूर्यमजभर्तन (सूर्य को लाए)

कहीं कहीं आदि अट् का लोट्—उदाहरण—ममम: तस्तमत्।

लट् लकार

इस लकार का प्रयोग वेदों में कम होता है। वेद में लट् से ही भविष्य की अभिव्यक्ति की जाती है। उदाहरण—स्तविष्यामि त्वामहम्।

कहीं कहीं अथ के पश्चात् लट् का प्रयोग होता है। उदाहरण अथ वां वक्ष्यामि।

लुट् लकार

किसी विशेष घटना की भविष्य में विशिष्ट समय पर होने वाली अभिव्यक्ति के लिए लुट् का प्रयोग होता है। लुट् की अभिव्यक्ति के साथ प्राय: प्रात: और श्व: का प्रयोग होता है। उदाहरण—संवत्सरतमीं रात्रिमागच्छतात्

अवश्यम्भावी घटना के लिए भी लुट् का प्रयोग होता है। उदाहरण—सो एवाप्यतोऽधिभविता।

तुमर्थक (Infinitives) और त्वा, ल्यप् (Gerunds)

तुम्—(पा०—तुमुन्) 'तुम्' प्रत्यय का प्रयोग "करने के लिए" अर्थ में होता है। पाश्चात्य विद्वान् तुमुन् प्रत्ययान्त को 'तु' प्रत्ययान्त अङ्ग के द्वितीया एकवचन का रूप मानते हैं। पाणिनि ने तुमुन् के अर्थ में निम्नलिखित सूत्र दिया है—

तुमर्थे सेसेनसे-असेन्-क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः।

से—(पा०—से, सेन् क्से) से, सेन् और क्से प्रत्ययान्त शब्द में गुण और वृद्धि का अभाव होता है। उदाहरण—

से—वक्षे (√वच्+से)

सेन्—यक्षे (√यज्+से)

क्से—जिषे, स्तुषे (√जि, स्तु+क्से)

असे—(पा० असे, असेन्, कसेन्) कसेन् प्रत्ययान्त अंग में गुण नहीं होता। उदाहरण—

असे—चरसे, जीवसे।

असेन्—अयसे, चक्षसे ।

कसेन्—भियसे, वृधसे ।

(भियसे और वृधसे में गुण का अभाव)

अध्यै—(पा० अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन) नित् प्रत्ययान्त में आद्युदात्त होते है। कध्यै और कध्यैन् प्रत्ययान्त अङ्गों में गुण एवं वृद्धि नहीं होती। उदाहरण—

अध्यै—चरध्यै, तरध्यै।

अध्यैन—गमध्यैं

कध्यै—इयध्यै (√इ से गुण न होकर इयङ् आदेश)

कध्यैन्—क्षियध्यैं

शध्यै—पिबध्यै (पा० पाघ्राध्मा० से पा के स्थान में पिब्)

तवै—एतवै, पातवै

तवे—(पा० तवेङ्, तवेन्) तवेङ् प्रत्ययान्त में गुण का अभाव और तवैन् प्रत्ययान्त में आद्युदात्त। उदाहरण—

तवेङ्—सूतवे

तवेन्—अत्तवे, कर्त्तवे (आद्युदात्त)

निम्नलिखित दो सूत्रों में पाणिनि ने कुछ शब्दों के निपात माने हैं—

(1) प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै—तुम् के अर्थ में इन शब्दों का निपात होता है। उदाहरण—

प्रयै—प्र + √या + कै प्रत्यय (प्रयातुम् के स्थान पर)

रोहिष्यै—रुह् + इष्यै प्रत्यय (रोढुम् के स्थान पर)

अयथिष्यै—अ + व्यथ् + इष्यै (संस्कृत-अव्यथनाय)—

(2) दृशे विख्ये च—इन दो शब्दों का भी तुमर्थ में निपात। उदाहरण—

दृशे—दृश् + के प्रत्यय (संस्कृत-द्रष्टुम्)

विख्ये—वि + ख्या + के प्रत्यय (विख्यातुम्)

निम्नलिखित सूत्रों में पाणिनि ने विशेष उपपद होने पर और विशेष अर्थों में कुछ प्रत्ययों को माना है।

(1) ईश्वरे तोसुमकसुनौ—ईश्वर शब्द के उपपद होने पर धातु के साथ तोसुन् और कसुन् प्रत्यय जुड़ते हैं। उदाहरण—विक्षोब्धोः—वि + क्षुभ + तोसुन्

कसुन् प्रत्यय होने पर गुण का अभाव होता है और धातु को आद्युदात्त होता है। उदाहरण—

आतृदः—आ + √तृद् + कसुन्। इसी प्रकार—

अवपदः—अव + √पद् + कसुन्

(2) शकि णमुल्कमुलौ—शक् के उपपद होने पर तुमुन् के अर्थ में कमुल (अम्) और णमुल् (अम्) प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

उदाहरण—देवा विभाजं नाशक्नुवन्।

वि + √भज् + णमुल।

(3) भावलक्षणे स्थेण्कृवदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन्—स्था, इण्, कृ, वदि, चरि, हु, तमि, जनि भाव लक्षण में विद्यमान इन धातुओं से तुम् के अर्थ में तोसुन् प्रत्यय होता है। उदाहरण—

एतोः, कर्त्तोः, जनितोः ।

मध्वा कर्त्तोः विततं संजभार।

(4) सृपितृदोः कसुन्—वेद में भावलक्षण सृप और तृद् धातुओं से तुमर्थ मे कसुन् प्रत्यय होता है। उदाहरण—

आतृदः—आ + √तृद् + कसुन्

विसृपः—वि + √सृप् + कसुन्

पाश्चात्य विद्वानों के मत में तुम् तवे और तोः (गन्तुं, गन्तवे और गन्तोः) प्रत्यय न होकर विधिवत् 'तु' अङ्ग के द्वितीया, चतुर्थी और पञ्चमी तथा षष्ठी के विभक्ति प्रत्यय हैं। उनके अनुसार गम् धातु से कृदन्त का 'तु' प्रत्यय जुड़कर 'गन्तु' प्रातिपदिक बनता है और उसके विभक्त्यन्त रूप हैं शेष तुमर्थक। तुमर्थक प्रत्ययों का वर्गीकरण पाश्चात्यों ने द्वितीयान्त, चतुर्थ्यन्त पञ्चमी और षष्ठ्यन्त तथा सप्तम्यन्त विभक्तियों के आधार पर किया है।

प्रत्ययों और अङ्गों के आधार पर तुमर्थकों का वर्गीकरण इस प्रकार है—

द्वितीयन्त—ये शब्द दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं—

(1) **अम्**—जिन शब्दों के अन्त में 'अम्' प्रत्यय होता है। पाणिनि के अनुसार ऐसे प्रत्यय के लिए वृद्धि वाले अङ्गों में णमुल् और गुणहीन अङ्गों में कमुल प्रत्यय है। उदाहरण—

समिधम्—सम् + √इन्ध् = समिध् = द्वितीया एकवचन रूप।

(2) **तुम्**—(पाणिनि के अनुसार तुमुन् प्रत्यय) उदाहरण—

अत्तुम्—√अद् + तु—अत्तु—द्वितीया एकवचन = अत्तुम्।

इसी प्रकार—कर्त्तुम्।

चतुर्थ्यन्त

(1) ए धातु से बने अङ्ग के साथ प्रत्यय जोड़कर निम्न प्रकार के रूप बने हैं—

दृशे—√दृश् + ए

भुजे—√भुज् + ए

युध्—√युध् + ए

(पाणिनि के द्वारा विहित दशे, विख्ये निपात इसी वर्ग के हैं)

पाणिनीय पद्धति में ऐसे शब्दों को क्विबन्त शब्दों के चतुर्थी एकवचन के रूप में माना जाता है। पाणिनि सब धातुओं के साथ क्विप् प्रत्यय का विधान करते हैं।

(2) **ऐ**—प्रायः आकारान्त धातुओं से परे 'ए' प्रत्यय आने पर ऐकारान्त रूप बनते हैं। उदाहरण—

प्रयै—प्र + √या + ए

विख्यै—वि + √ख्या + ए

प्रतिमै—प्रति √ + मा + ए

(पाणिनि के द्वारा विहित प्रयै रोहिष्यै इसी वर्ग के हैं)

(3) **से**—पाणिनि के से, सेन् क्से ये शब्द सकारान्त अङ्गों के चतुर्थ्यन्त रूप हैं। उदाहरण—

जिषे—√जि + स् = जिष् + चतुर्थी एकवचन—जिषे

यक्षे—√यज् + स् + यक्ष् + चतुर्थी एकवचन—यक्षे

(4) **असे**—(पाश्चात्यों के अनुसार यह प्रत्यय धातु के साथ अस् प्रत्यय जोड़कर चतुर्थ्यन्त में निष्पन्न होता है। स्वर और अंग को दृष्टि में रखते हुए पाणिनि ने असे, असेन् और कसेन् यह तीन प्रत्यय माने हैं। उदाहरण

अर्हसे—√अर्ह + अस् = अर्हस् + चतुर्थी एकवचन

राजसे—राज् + अस् = राजस् + चतुर्थी एकवचन

(5) **अये**—इस प्रत्यय वाले शब्द धातु के साथ 'इ' प्रत्यय जुड़कर बने हुए प्रातिपादिकों के चतुर्थी एकवचन रूप हैं। उदाहरण—

दृशये—दृश् + इ = दृशि + चतुर्थी एकवचन—दृशये, महये।

(6) **तये** – √धातु के साथ 'ति' प्रत्यय जुड़कर चतुर्थी एकवचन में 'तये' तुमर्थक बनता है। उदाहरण—

इष्टये – √इष् + ति = इष्टि + चतुर्थी एक वचन

पाणिनि पूर्वोक्त शब्दों में क्तिन् प्रत्ययान्त के चतुर्थी एकवचन रूप मानते हैं। इसी प्रकार—

ऊतये – अव + ति = ऊति + चतुर्थी एकवचन

पीतये—√पा + ति = पीति + चतुर्थी एकवचन

(7) **तवे** – पाणिनि इसके लिए दो प्रत्यय—तवेङ् और तवेन् का विधान किया है। उदाहरण

सूतवे—√सू + तु + चतुर्थी एकवचन

अत्तवे—√अद् + तु + चतुर्थी एकवचन

गन्तवे—√गम् + तु + चतुर्थी एकवचन

(8) **तवै**—(पाणिनि के अनुसार तवै प्रत्यय) उदाहरण

एतवै—√ई + तवा = एतवा + चतुर्थी एकवचन

मन्तवै—√मन् + तवा = मन्तवा + चतुर्थी एकवचन

(9) **अध्यै**—उदाहरण

चरध्यै – √चर् + अ + धि = चरधि + चतुर्थी एकवचन

तरध्यै, पिबध्यै

पञ्चम्यन्त – अस् और तोस् प्रत्ययान्त तुमर्थक पञ्चम्यन्त और षष्ठ्यन्त माने जाते हैं।

1. **अस्** – उदाहरण

आतृदः – आ + √तृद् + अस्

(पाणिनि कसुन् प्रत्यय)

2. **तोस्**—पाश्चात्य 'तु' अङ्ग से पञ्चमी और षष्ठी में रूप को तोस् प्रत्ययान्त मानते हैं। उदाहरण

एतोः √ई + तु = एतु + पञ्चमी या षष्ठी एकवचन

गन्तोः।

(पाणिनि के अनुसार ईश्वर उपपद होते हुए तोसुन् प्रत्यय)

सप्तम्यन्त - इस वर्ग में आने वाले तुमर्थकों का विभाजन इस प्रकार है—

(1) हलन्त अङ्गों में सप्तम्यन्त। उदाहरण

सञ्चक्षि – सम् + √चक्ष् + सप्तमी एकवचन

बुधि – √बुध् + सप्तमी एकवचन

(पाणिनि के अनुसार धातु से क्विप् प्रत्यय जुड़कर यह रूप बने हैं)

(2) 'तृ' अङ्ग से । उदाहरण —

धर्तरि—धृ+तृ+सप्तमी एकवचन

(3) सन् प्रत्ययान्त से । उदाहरण

नेषणि—√नी =ने+सन्=षण् = नेषण्+सप्तमी एकवचन

इसी प्रकार पर्षाण, शूषणि ।

त्वार्थक शब्द (Gerunds)

एक वाक्य में समान कर्त्ता वाले दो अथवा अधिक धातुओं के प्रयोग होने पर पूर्व क्रिया की निष्पन्नता पर उत्तर क्रिया यदि निर्भर हो तो पूर्ववर्ती क्रिया की अभिव्यक्ति 'क्तवा' प्रत्यय जोड़कर की जाती है :

(पाणिनि -- समानकर्त्तृकयो: पूर्वकाले) उदाहरण—

यो हत्वाहिमरिचात् सप्तसिन्धून्

पाणिनि के अनुसार नञ् से भिन्न समास के पूर्ववर्त्ती होने पर 'क्तवा' के स्थान पर 'य' (पा० —ल्यप्) और ह्रस्व अंग से परे 'त्य' प्रत्यय होता है । उदाहरण—

निषद्य, आरभ्य

ल्यप् का दीर्घ —कुछ वैदिक शब्दों में अन्त्य अकार को दीर्घ होता है । उदाहरण—

आवृत्या, निषद्या ।

ल्यप् का अपवाद —समास पूर्व होने पर वेद में 'त्वा' प्रत्यय भी होता है ।

उदाहरण—परिधापयित्वा ।

'त्वा' और 'त्य' के अतिरिक्त वेद में निम्नलिखित अन्य प्रत्यय भी होते हैं ।

त्वाय —(पाणिनि के अनुसार क्तवा प्रत्यय को यक् का आगम)

उदाहरण—गत्वाय, दत्वाय ।

(2) **त्वी** —त्वा के अर्थ में त्वी का प्रयोग । उदाहरण—

कृत्वी, जनित्वी

(3) **त्वीनम्** —पाणिनि ने इष्टवीनम् शब्द को इष्ट्वा के अर्थ में निपात माना है । इसी प्रकार पीत्वीनम् पीत्वा के स्थान पर है ।

(4) पाणिनि के अनुसार **णमुल** समास में या पूर्ववर्त्ती शब्द विद्यमान होने पर होता है। यह 'त्वा' से मिलते जुलते अर्थ को अभिव्यक्त करता है । उदाहरण—

"तन्त्रमेते युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयत: षण्मयूखम् ।" यहां पर "अभ्याक्रामम्" 'आती हुई' के यौगपद्य को अभिव्यक्त करता है ।

वैदिक स्वर

ऋग्वेद में तीन स्वर है—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । पाणिनि के अनुसार—उच्चैरुदात्त:, नीचैरनुदात्त: और समाहार: स्वरित: है । तालु आदि उच्च स्थानों से उच्चार्यमाण उदात्त, निम्न स्थानों से उच्चार्यमाण अनुदात्त और आधे-उदात्त और शेष अनुदात्त का समाहार स्वरित है । ऋक्-प्रातिशाख्य (117) के अनुसार पूर्वोक्त तीन स्वरों को क्रमश: आयाम (Tension of vocal muscles) विश्रम्भ (Relaxatin) एवं आक्षेप (gerky movement) कहा जा सकता है । उदात्त चिह्नरहित होता है। अनुदात्त में अक्षर के नीचे तिरछी रेखा अंकित होती हैं । स्वरित में अक्षर के ऊपर खड़ी सीधी रेखा अंकित होती है ।

उदात्त के पश्चात् परतन्त्र स्वरित आता है—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः। जहाँ सन्धिनियम के कारण पूर्ववर्ती उदात्त लुप्त हो जाता है वहां स्वतन्त्रस्वरित होता है। उदाहरण—

क्वेत्=क्व+इत् (अ+इ का प्रश्लेष)। यहाँ पूर्ववर्ती उदात्त 'क्व' स्वतन्त्र स्वरित बन गया। अभिनिहित क्षैप्र और प्राश्लिष्ट सन्धियों के कारण जात्य स्वरित की उत्पत्ति होती है। जात्य स्वरित प्रायः उदात्त+स्वरित (दोनों का मिश्रण) होता है। उदाहरण स्वर्णरि, कन्यासु।

कम्प—स्वतन्त्र स्वरित के पश्चात् यदि उदात्त हो और स्वरित का अच् यदि ह्रस्व हो तो १ का चिह्न अंकित होता है स्वरित का अच् दीर्घ होने पर 3 चिह्न लगता है। क्रमशः उदाहरण हैं—वीर्यं १ मिन्द्र, तथा तन्वा 3 संवदे। परन्तु यदि स्वतन्त्र स्वरित के बाद उदात्त न हो तो पूर्वोक्त चिह्न नहीं लगते। उदाहरणार्थ वीर्याणि। पूर्वकथित कम्प का कारण यह है कि स्वतन्त्र स्वरित का उदात्तांश आगामी उदात्त के आने के कारण अर्द्ध अनुदात्त में परिणत करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में उदात्त स्वर को अनुदात्त में परिवर्तित करते समय स्वर का कम्पन या कम्प उत्पन्न होता है।

प्रायः एक शब्द में एक ही उदात्त होता है शेष अनुदात्त होते हैं—पाणिनि अनुदात्तं पदमेकवर्जम्। अर्द्धर्च अर्थात् दो पादों में स्वर की इकाई मानी जाती है।

स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों को अंकित नहीं किया जाता। इन अनुदात्तों को प्रचय कहते हैं, उदाहरण संदितम्। यहाँ 'दि' में स्वरित है, अतएव 'त' प्रचय है। संहिता में इस प्रकार के अनुदात्तों में से अन्तिम अनुदात्त, जिसके पश्चात् उदात्त या स्वतन्त्र स्वरित आता है, अंकित किया जाता है—उदात्तस्वरितपरस्य समतरः। अंकित नहीं किये जाने वाले अनुदात्त निहत कहलाते हैं। दो उदात्तों के बीच अवस्थित एक अनुदात्त में कोई परिवर्तन नहीं होता।

दो उदात्त वाले शब्द

प्रायः एक शब्द में एक उदात्त होता है, परन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में दो उदात्त मिलते हैं—

(1) तवै प्रत्ययान्त—उदाहरण—एतवै, पातवै।
(पाणिनि—तवै चान्तश्च युगपत्)

(2) देवता द्वन्द्व—उदाहरण—मित्रावरुणा

(3) षष्ठी पूर्वपद वाले समास—उदा०—बृहस्पतिः, वनस्पतिः।

सर्वानुदात्त शब्द

निम्नलिखित पदों में कोई उदात्त नहीं होते :—

(1) अनुदात्त निपात—च, वा, इव, उ, घ, चित्, स्म, स्वित् कम्, यदि नु, सु, हि के पश्चात् आते हों।

(2) त्व, सम और एन के सब रूप।

(3) युष्मद् अस्मद् के निघातादेश के रूप। उदाहरण मा, मे, नौ, नः, त्वा, ते, वाम्, वः।

(4) ईम्, सीम् तथा 'इदम्' के अन्वादेश में अश् के बाद तृतीयादि विभक्ति होने पर। उदाहरण—अस्मात्, अस्य।

(5) पाद या वाक्य के आरम्भ में न आने वाला सम्बोधन।

(6) पाद के आरम्भ में न आने वाला और यद्वृत्त से हीन तिङन्त पद । उदाहरण—

वीर्याणि प्रवोचम्

परन्तु वाक्य या पाद में 'यद्' शब्द के विद्यमान होने पर उदात्त होता है । उदाहरण—यः पार्थिवानि विममे रजांसि:

(7) यथा जब 'इव' के अर्थ में प्रयुक्त हो। उदाहरण—तायवो यथा ।

प्रातिपदिकों के स्वर

ञित् और नित् आद्युदात्त होते हैं—**ञ्नित्यादि नित्यम्**

चित् अन्तोदात्त होता है—**चितः**

सुबन्त और पित् अनुदात्त होते हैं—**अनुदात्तौ सुप्पितौ,**

लित् प्रत्यय से पूर्वोदात्त होता है।

तित् स्वरित होता है—तित्स्वरितम् ।

अन्य प्रत्यय

जब शतृ शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के समास उपसर्ग से युक्त होते हैं, तब उनका मूलभूत उदात्त रहता है और उपसर्ग का उदात्त हटा दिया जाता है । उदाहरण—

अपगच्छत्—शतृ

त एवं क्त के उपसर्ग के साथ समास होने पर उदात्त उपसर्ग में चला जाता है । उदाहरण—

निहित, समाकृत

ल्यप्, त्य, त्व इन प्रत्ययों के होने पर धातु पर उदात्त होता है । उदाहरण—

श्रुत्य, चक्य—पाणिनि अनुदात्तौ सुप्पितौ ।

ल्यप् अनुदात्त होता है ।

तव्यत् में स्वरित होता है । पाणिनि—तित्स्वरितम् ।

उदाहरण—हिंसितव्य ।

से, असे, अध्यै, तवे में आद्युदात्त होता है । उदाहरण—

यक्षे, कर्त्तवे ।

तोः में आद्युदात्त । उदाहरण—गन्तोः ।

पाणिनि—ञ्नित्यादिर्नित्यम्—से आद्युदात्त ।

समास स्वर

द्वन्द्व समास—इसमें प्रायः अन्तिम अक्षर पर उदात्त होता है । उदाहरण—सत्यानृतम्

परन्तु देवताद्वन्द्व में दो उदात्त होते हैं। यथा—मित्रावरुणा द्वन्द्व में संख्यावाची पूर्वपद पर प्रकृति उदात्त। उदाहरण—एकादश।

अव्ययीभाव--इसमें अन्तिम अक्षर पर उदात्त होता है। उदाहरण—अनुक्रामम्। परन्तु कुछ शब्दों पर पूर्वपद पर उदात्त होता है। उदाहरण—अधिरथम्

तत्पुरुष समास—प्रायः अन्तिम अक्षर पर उदात्त होता है। उदाहरण—राजपुत्र

क्तान्त, नान्त और क्तिनन्तक शब्दों में पूर्वपद में उदात्त होता है। उदाहरण—देवहित

'पति' शब्द के द्वितीय पद में होने पर पूर्वपद में उदात्त होता है। उदाहरण—गृहपति

षष्ठी समास के अलुक् उदाहरणों पर दो उदात्त होते हैं। उदाहरण—वनस्पति, 'बृहस्पति'।

नञ् समास में आद्युदात्त होता है। उदाहरण—अमन्यमानान्, अकवि

कर्मधारय—में प्रायः अन्तिम अक्षर पर उदात्त होता है। उदाहरण—प्रथमजा। निष्ठा (क्त, क्तवतु) शब्दों में आदि पद पर उदात्त होता है—सधस्तुति।

बहुव्रीहि—में पूर्वपद पर उदात्त होता है। उदाहरण—राजपुत्र, हतमातृ।

द्विरुक्त समास में पूर्वपद पर उदात्त होता है। उदाहरण—अहरहः, दिवेदिवे।

सन्धि में स्वर

(1) सन्धि में उदात्त के साथ अनुदात्त मिलने पर उदात्त होता है। उदाहरण—इह+अस्ति=इहास्ति। पाणिनि—**एकादेश उदात्तेनोदात्तः।**

(2) दीप्र सन्धि होने से उदात्त इ उ का य् व् बनने पर स्वतन्त्र स्वरित की उत्पत्ति होती है।

उदाहरण—वि=आनट्=व्यानट्।

नु+इन्द्रः=न्विन्द्रः।

पा० --उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य।

(3) ए ओ से उदात्त अ का पूर्वरूप होने पर अ का उदात्त ए ओ पर चला जाता है।

उदाहरण—सूनवे+अग्ने=सूनवेऽग्ने।

परन्तु यदि ए ओ उदात्त हो और पश्चात् का अ अनुदात्त हो तो पूर्व रूप होने पर ए ओ पर स्वतन्त्र स्वरित हो जाता है।

उदाहरण—सो अ ब्रवीत् = सोऽब्रवीत् ।

सुप् विभक्तियों के स्वर

सुप् विभक्तियाँ प्रायः अनुदात्त होती हैं—अनुदात्तौ सुप्पितौ । प्रायः सम्बोधन में उदात्त नहीं होता । यदि होता है तो प्रथम अक्षर पर ही होता है ।

उदाहरण—पितः ।

प्रातिपदिक और विभक्त में यण् होने पर मूल उदात्त पर चला जाता है । उदाहरण—अग्नि + ओस् = अग्न्योः । परन्तु ईकारान्त और ऊङ् प्रत्ययान्त शब्दों की सन्धि होने पर स्वतन्त्र स्वरित की उत्पत्ति होती है । उदाहरण—वृकी + ए = वृक्ये ।

तिङन्त स्वर

(1) लुङ्, लङ्, लृङ् में अट् का आदि आगम उदात्त होता है—लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः । उदाहरण—अभवत् ।

(2) विकरणहीन लुङ् पर प्रायः धातु पर उदात्त होता है । उदाहरण—करत् ।

(3) चुरादिगण और णिजन्त में सन्धि में शप् से पूर्व उदात्त होता है । उदाहरण—पत् + णिच् = पाति, पाति + अ + ति = पातयति ।

(4) सन्नन्त में आद्युदात्त—उदाहरण—जिघांसति ।

(5) यङन्त, नामधातु और कर्मवाच्य के 'य' प्रत्यय पर उदात्त । उदाहरण—नेनीयते, मुच्यते ।

(6) पाद या वाक्य के आरम्भ में आने वाली क्रिया में उदात्त होता है । उदाहरण—अजयः गाः ।

पद पाठ के नियम

(1) सन्धि में शब्दों को अलग-अलग कर लीजिए । उपसर्ग और धातु के मध्य तथा समास के दो उपपदों के मध्य अवग्रह चिह्न लगाइये ।

(2) दो या अधिक उपसर्गों के बाद धातु होने पर पहले उपसर्ग के बाद अवग्रह होता है । उदाहरण—प्रतिऽआवर्त्तय ।

(3) √ कृ के साथ सुट् के आगम की स्थिति में अवग्रह होता है एवं पदपाठ में सुट् का लोप होता है । उदाहरण—परिष्कृण्वन्ति > परिऽकृण्वन्ति ।

(4) समास में दो से अधिक पद होने पर सबसे अन्तिम पद के पूर्व अवग्रह लगता है । उदाहरण—प्रजापतिऽसृष्ट ।

(5) नञ् समाज और देवताद्वन्द्व में अवग्रह नहीं होता । उदाहरण—अनीशः, इन्द्रावरुणा ।

(6) व्यंजन और ह्रस्व स्वर के पश्चात् आने वाले भ्याम्, भिः, भ्यः, सु विभक्तियों में अवग्रह होता है । उदाहरण—अप् + सु = अप्ऽसु । दीर्घ स्वर के पश्चात् अवग्रह नहीं होता । उदाहरण—देवेभिः ।

(7) स्वर के पश्चात् आने वाले क्यच् प्रत्यय को अवग्रह होता है । उदाहरण—सुम्नयु:=सुम्नऽयु: ।

(8) ह्रस्व स्वर के परे असम्प्रसारित क्वसु प्रत्यय को अवग्रह होता है । उदाहरण—पपिवान्=पपिऽवान् ।

(9) तद्धित प्रत्यय मत्, वत्, वस्, शस्, त्व, त्रा, ताति, धा, मय, तर और तम का अवग्रह होता है । उदाहरण—उत्ऽतमम्, त्रिऽधा ।

(10) प्रगृह्य पदों के पश्चात् 'इति' शब्द जुड़ता है । उदाहरण—वायो इति, अस्मे इति ।

(11) रिफित विसर्जनीय के पश्चात् भी 'इति' जुड़ता है । उदाहरण—पुन: इति पुनरिति ।

परन्तु जहाँ रिफित स्पष्ट दृष्टिगत होता है, वहाँ इति नहीं जुड़ता । उदाहरण—प्रातरग्निम्=प्रात: अग्निम् ।

(12) रेफमूलक विसर्गों वाले क्रियारूपों में इति का प्रयोग करके उसका पुनरुच्चारण होता है । उदाहरण—कृ से अक:=अकरित्यक: ।

(13) अस् से बने स्यु: में भी इति के पश्चात् पुनरुच्चारण होता है । उदाहरण—स्यु:=स्युरिति स : । स्व: शब्द के पश्चात् भी यही नियम लागू होता है—स्व: =स्वरिति स्व: ।

निम्नलिखित तालिका के द्वारा संहिता से पदपाठ करने में सहायता मिलेगी—

अनुदात्त अनुदात्त	>	कोई परिवर्तन नहीं
अनु० अनु० उदात्त	>	"
उ० निहत उ०	>	उदात्त अनु० उदात्त
उ० नि०	>	उ० स्वरित
उ० नि० नि०	>	उ० स्व० प्रचय
उ० नि० नि० नि०	>	उ० स्व० प्र० प्र०
उ० नि० नि० उ०	>	उ० स्व० अ० उ०
उ० नि० नि० नि० उ०	>	उ० स्व० प्र० अ० उ०
उ०नि०नि०नि०···नि०उ०	>	उ० स्व० प्र० प्र०···अ० उ०
उ० जात्य० अ० अ० जा०	>	कोई परिवर्तन नहीं
उ० नि० जा०	>	उ० अ० जा०
जा० नि०	>	जा० प्र०
जा० नि० नि०	>	जा० प्र० प्र०
जा० नि०···नि० उ०	>	जा० प्र०···अ० उ०
उ० नि०···नि० जा०	>	उ० स्व० प्र०···अ० जा०